Mob. : 9931444467
8340539341

Dr. Md. Sayeed Alam

Associate Professor
Deputy Director of UGC, HRDC, P.U.
P.G. Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005 (Bihar)

Director : Former Deputy Director of DDE, P.U & Senate Member of M.U. Gaya
Member : Former Senate & Finance Committee, Approval Fixation & Seniority, P.U.
Chairman : Haji Hakim Mahmood (H.H.M.) Educational & Welfare Trust, Gaya (Bihar)

Professor's Qtr., Krishna Ghat, Patna University, Patna - 800 005
E-mail : sayeedpu@gmail.com, hhmgaya@gmail.com

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना के परिणामस्वरूप वहाँ के शासन, समाज, भाषा-साहित्य, धर्म एवं कला आदि पर भारतीय तत्वों का प्रभाव पड़ा। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

शासन-पद्धति—भारतीय हिन्दू राजाओं के ही समान दक्षिणी-पूर्वी एशिया के शासक 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे। वे अपनी दैवी उत्पत्ति में भी विश्वास करते थे। चम्पा के एक लेख में राजा को 'पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता' कहा गया है। वह प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसकी

Scanned with CamSc

राजसभा ऐश्वर्य एवं शान-शौकत से परिपूर्ण होती थी। भारतीय नरेशों के ही समान वे चतुरंगिणी सेना रखते थे। महासेनापति सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था। सम्राट निरंकुश होते थे। न्याय-व्यवस्था भी भारतीय थी। सम्राट सिद्धान्ततः निरंकुश होता था। किन्तु व्यावहारिक रूप में वह ऐसा नहीं था। धर्मशास्त्रों का ज्ञाता होने के कारण वह धर्म तथा नीति के अनुसार ही शासन करता था। प्रजापालन तथा रक्षण उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। धार्मिक होना सम्राट के लिये अनिवार्य था तथा वह समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का संस्थापक भी था। जावा में भी शासक को देवस्वरूप माना जाता था तथा मृत्यु के बाद देवताओं के समान उसकी भी मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। भारतीय साम्राज्यों के समान यहाँ के साम्राज्य भी विभिन्न प्रान्तों में विभाजित थे तथा राजपुत्रों को राज्यपाल बनाने की प्रथा थी। सम्राट दिग्विजय का आदर्श अपने सामने रखते थे।

सम्राट देश का सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था। वह धर्मशास्त्रों के अनुसार न्याय का कार्य करता था। मनु, नारद तथा भार्गव धर्मशास्त्रों का अनुसरण किया जाता था।

समाज—भारतीय समाज के समान ही दक्षिण-पूर्व एशिया के समाज में भी हमें चातुर्वर्ण व्यवस्था के दर्शन होते हैं। इण्डोनेशिया के लेखों में इसका उल्लेख मिलता है। भारतीय जाति व्यवस्था का समाज में प्रचलन था। जावा के साहित्य तथा लेखों में ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का उल्लेख मिलता है। 'तत्व निंग व्यवहार' नामक प्राचीन जावानी रचना में चार वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मस्तक, बाहु, जघे तथा पैरों से बताई गयी है। यह विवरण ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के विवरण पर आधारित है। चातुर्वर्ण के व्यवसायों का उल्लेख भी लेखों तथा ग्रन्थों में मिलता है। वहाँ के समाज में भी ब्राह्मणों का प्रतिष्ठित स्थान था। वे अध्ययन-अध्यापन में रत रहते थे। क्षत्रिय वर्ण के लोग युद्ध एवं शासन के कार्यों में भाग लेते थे। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की गणना उच्च वर्ग में होती थी। दास-प्रथा का भी प्रचलन था। समाज में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक थी। पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियाँ राजनीति तथा शासन में भाग ले सकती थीं। जावा के शासक ऐरलंग के लेख से पता चलता है कि वह अपनी रानियों के साथ राजसभा में बैठता था। इसी प्रकार विष्णुवर्धन के बाद उसकी पुत्री ने शासन चलाया था। स्त्रियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। भारतीय महिलाओं के समान उन्हें भी अपना पति चुनने का अधिकार था।

सती प्रथा भी प्रचलित थी। विवाह को यहाँ भी भारत के समान एक पवित्र धार्मिक संस्कार माना जाता था। प्रायः सवर्ण विवाह ही किये जाते थे किन्तु कभी-कभी अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। समाज के लोगों की वेष-भूषा भी भारतीयों जैसी ही थी। संगीत, नाटक, नृत्य, वाद्य-क्रीड़ा आदि मनोविनोद के विविध साधन थे। स्त्री-पुरूष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। चावल यहाँ के निवासियों का मुख्य खाद्य था। मदिरा पीने तथा पान खाने का भी प्रचलन था।

वीणा, मृदंग, सितार, बांसुरी आदि प्रमुख वाद्य यन्त्र थे। स्त्रियाँ सामूहिक नृत्य करती थीं। शतरंज का खेल भी समाज में प्रचलित था। नाटकों का भी अभिनय होता था। लोग कठपुतलियों के नाच द्वारा भी मनोरंजन करते थे।

भाषा तथा साहित्य—दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न राज्यों मे भारत की संस्कृत भाषा का व्यापक प्रचार-प्रसार था। कम्बुज, चम्पा, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि से संस्कृत भाषा में लिखे गये लेख प्राप्त होते हैं। लेखों की शैली काव्यात्मक है तथा इनमें संस्कृत के प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग मिलता है। इनके लेखक संस्कृत

Scanned with CamSc

व्याकरण के नियमों से पूर्ण परिचित लगते हैं। अभिलेखों से पता चलता है कि इन देशों में वेद, वेदान्त, स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ब्राह्मणग्रन्थों के साथ ही साथ विभिन्न बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया जाता था। कालिदास का भी वहाँ के साहित्य पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। वहाँ के नरेश विद्वान् एवं विद्वानों के आश्रयदाता थे। जावा के निवासियों ने न केवल संस्कृत का अध्ययन किया, अपितु इन्होंने भारतीय साहित्य के अनुकरण पर अपना एक विस्तृत साहित्य निर्मित किया जिसे 'इण्डो-जावानी साहित्य' कहा जाता है। लगभग पाँच सौ वर्षों तक इस साहित्य का विकास होता रहा। जावा में महाभारत के आधार पर अनेक ग्रन्थों की भी रचना हुई जिनमें अर्जुनविवाह, भारतयुद्ध, स्मरदहन, सुमनसान्तक आदि उल्लेखनीय हैं। भारतीय स्मृति तथा पुराणों पर आधारित भी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। 'अर्जुन विवाह' की रचना ऐरलंग (1019-42) ई० के शासन काल में हुई थी। कडिरि राज्य के समय 'कृष्णायन' की रचना हुई जिसमें कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण तथा जरासंध के वध की कथा है। रघुवंश के आधार पर 'सुमन सान्तक' लिखा गया। 'स्मरदहन' का आधार कालिदास का 'कुमारसंभव' है। महाभारत के उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि पर्वों के आधार पर 'भारत युद्ध' नामक ग्रन्थ की रचना की गयी।

इस प्रकार जावानी साहित्य मूल भारतीय रचनाओं, उनके अनुवाद आदि से भरा पड़ा है।

धर्म और धार्मिक जीवन—दक्षिणी-पूर्व एशिया के विभिन्न देशों में ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों का बोलबाला था। बर्मा तथा स्याम में बौद्ध धर्म का प्रचलन था जबकि अन्य देशों में पौराणिक हिन्दू धर्म ही विशेष रूप से लोकप्रिय था। पौराणिक देवताओं में शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा विशेष लोकप्रिय थे। शैव धर्म तो वहाँ का राजधर्म था। शिव की पूजा लिंगों तथा मूर्तियों दोनों के रूप में की जाती थी। शिव के रौद्र तथा सौम्य दोनों ही रूपों से जावानी परिचित थे। महादेव तथा महाकाल के नाम से उनकी पूजा की जाती थी। दोनों रूपों की मूर्तियाँ विभिन्न स्थानों से मिलती हैं। महादेव की शक्ति देवी, महादेवी पार्वती अथवा उमा की भी उपासना की जाती थी। दुर्गा अथवा महाकाली की पूजा भी होती थी। शिव-पार्वती के पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय को भी जावा में देवरूप में पूजा जाता था। गणेश की मान्यता विघ्न-विनाशक के रूप में थी। विष्णु की पूजा नारायण, पुरुषोत्तम, माधव आदि नामों से की जाती थी। कई स्थानों से विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। उनके प्रतीक के रूप में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म का अंकन मिलता है। चम्पा से शेषनाग पर शयन करते हुए विष्णु की मूर्ति प्राप्त होती है। कम्बुज का अंकोरवाट स्थित विष्णु मन्दिर वहाँ उनकी लोकप्रियता का जीता-जागता प्रमाण है। कृष्ण, राम, मत्स्य, वाराह तथा नृसिंहावतार के रूप में भी विष्णु की मूर्तियाँ बनाई गयी। जावा के निवासी इन अवतारों-सम्बन्धी विभिन्न पौराणिक कथाओं से परिचित थे। शिव तथा विष्णु के अतिरिक्त ब्रह्मा की भी पूजा होती थी। मूर्तियों में उनके चार मुख दिखाये गये हैं जो हंस पर विराजमान हैं तथा अपने हाथ में माला, चमर, कमल तथा कमण्डल धारण किये हुए हैं। ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती की भी मूर्ति मिलती है। तीनों देवताओं को एक साथ मिलाकर 'त्रिमूर्ति' कहा गया तथा इस रूप में भी उनकी पूजा का प्रचलन था। इन देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य भारतीय देवी-देवताओं जैसे—यम, वरुण, अग्नि, इन्द्र, कुबेर, सूर्य, चन्द्र आदि की पूजा भी दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न भागों में प्रचलित थी।

Scanned with CamSc

बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय जैसे हीनयान, महायान, वज्रयान आदि का भी दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों में प्रचलन था। इत्सिंग के अनुसार श्रीविजय बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। वह लिखता है कि यह धर्म दक्षिणी-पूर्वी एशिया के द्वीपों में दूर-दूर तक फैल चुका था तथा 10 से अधिक देशों में सर्वास्तिवाद यश फैला था, जबकि कुछ भागों में महायान मत का भी प्रचार था। आठवीं शती से महायान मत की प्रधानता हो गयी और यह मलाया के अतिरिक्त सुमात्रा तथा जावा में द्रुत गति से फैल गया। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में शैलेन्द्र शासकों का महान् योगदान रहा। जावा का बोरोबुदूर स्तूप वहाँ बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का सूचक है। विभिन्न रूपों में बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सभी धर्मों में पारस्परिक सामंजस्य था। इस समय हिन्दू तथा बौद्ध देवताओं को संयुक्त करने का प्रयास किया गया। शिव, विष्णु तथा बुद्ध को परस्पर संयुक्त कर पूजा करने की भावना बलवती हो गयी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत के जैन-धर्म के सिवाय अन्य सभी धर्मों का सुदूर-पर्व में व्यापक प्रचार-प्रसार था। वहाँ के निवासी वैदिक यज्ञों का भी अनुष्ठान करते थे तथा दानादि द्वारा पुण्यार्जन में विश्वास रखते थे। रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रन्थों का नियमित पाठ भी किया जाता था।

कला— दक्षिण-पूर्व एशिया की कला के प्रत्येक अंग पर भारतीय कला का स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसिद्ध कलाविद् कुमारस्वामी ने तो दक्षिणी-पूर्वी एशिया की कला को भारतीय कला का ही एक अंग माना है। नगर-निर्माण, स्थापत्य तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में भारतीय प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक दर्शनीय है।

दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रसिद्ध नगरों में अंकोरथोम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो कम्बुज राज्य की राजधानी थी। इसका निर्माण भारतीय नगरों की पद्धति पर हुआ था। यह एक वर्गाकार नगर था जो चारों ओर से गहरी खाई तथा पत्थर की दीवारों से घिरा हुआ था। नगर में प्रवेश के निमित्त खाई के ऊपर पाँच पुलों का निर्माण किया गया। इन पुलों से लगे हुए पाँच ऊँचे शिखरों वाले तोरणद्वार थे। नगर के भीतर भव्य एवं अलंकृत महल, मन्दिर तथा सरोवर बने हुये थे। इस प्रकार अंकोरथोम न केवल कम्बुज का, अपितु सम्पूर्ण प्राचीन विश्व का एक सुन्दर नगर था।

दक्षिण-पूर्व एशिया की वास्तु कला के अन्तर्गत हम जावा के बोरोबुदुर स्तूप, कम्बुज के अंकोरवाट मन्दिर, बर्मा के आनन्द मन्दिर तथा चम्पा के माईसोन एव पोनगर के मन्दिरों का मुख्य रूप से उल्लेख कर सकते हैं।

जावा स्थित बोरोबुदुर का विशाल बौद्ध-स्तूप वस्तुतः प्राचीन विश्व की अत्युत्कृष्ट रचना है। इसका निर्माण शैलेन्द्र राजाओं के संरक्षण में 750-850 ईस्वी के मध्य हुआ था। इसमें कुल नौ चबूतरे (Terraces) हैं। प्रत्येक ऊपरी चबूतरा अपने निचले से छोटा होता गया है। सबसे ऊपरी चबूतरे के मध्य घण्टाकृति का स्तूप बनाया गया है जो सम्पूर्ण निर्माण को आच्छादित करता है। नौ चबूतरों में से छः वर्गाकार तथा ऊपर के तीन गोलाकार हैं। ऊपर के तीन चबूतरों पर 72 स्तूप निर्मित हैं जिनके ताखों में बुद्ध प्रतिमायें स्थापित की गयी हैं। नीचे के चबूतरों की दीवारों पर जातक कथाओं तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थों से लिये गये अनेक दृश्यों का कलापूर्ण अंकन हुआ है। चारों दिशाओं में ऊपर जाने के लिये सीढ़िया बनाई गयी हैं। कुल मिलाकर बोरोबुदुर एक अत्यन्त भव्य रचना है। मजूमदार ने तो इसे 'संसार का आठवाँ महान् आश्चर्य' कहना उचित समझा है।

Scanned with CamSc

बृहत्तर भारत के हिन्दू मन्दिरों में कम्बुज (कम्बोडिया) के अंकोरवाट का विष्णुमन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका निर्माण 1125 ई० में कम्बुज के राजा सूर्यवर्मा द्वितीय द्वारा करवाया गया था। यह सम्पूर्ण मन्दिर पत्थर का बना है। ढाई मील के घेरे में स्थित इस मन्दिर के चारों ओर 650 फीट चौड़ी तथा $2\frac{1}{2}$ मील लम्बी खाई है। मन्दिर में जाने के लिये 40 फीट चौड़ा एक पुल बनवाया गया है। मन्दिर तीन हजार फुट की चौकोर पत्थर की मेढ़ी (चबूतरे) पर बना है। प्रवेशद्वार से अन्दर जाते ही लगभग आधे मील की परिधि में बनी एक लम्बी वीथी (गैलरी) मिलती है। यह मन्दिर का प्रदक्षिणापथ है। मन्दिर का गर्भगृह ऊँचे स्थान पर स्थित है जिस पर पहुँचने के निमित्त सीढ़ियां बनाई गयी है। मन्दिर के बीच का शिखर सबसे ऊँचा है तथा चार कोनों पर चार अन्य शिखर बनायें गये हैं। पूरे मन्दिर के निर्माण में कहीं भी चूने अथवा पलस्तर का प्रयोग नहीं मिलता है। मन्दिर अपनी मूर्तिकारी के लिये भी प्रसिद्ध है। इसकी दीवारों पर पौराणिक कथाओं का अंकन चित्रों द्वारा किया गया है। रामायण की सम्पूर्ण कथा यहाँ उत्कीर्ण मिलती है। साथ ही साथ राजाओं, सैनिकों आदि का भव्य एवम् कलापूर्ण अंकन प्राप्त होता है।

अंकोरवाट का मन्दिर मध्यकालीन हिन्दू स्थापत्य की एक उत्कृष्ट रचना है। शताब्दियों की प्राकृतिक आपदाओं की उपेक्षा करते हुए यह आज भी अपनी सुदृढ़ता एवम् भव्यता को सुरक्षित किये हुए है।

बर्मा के पगान में स्थित आनन्द-मन्दिर भी वास्तु कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। यह 564 फीट के वर्गाकार प्रांगण में स्थित है। मुख्य मन्दिर का निर्माण ईंटों से हुआ है। मध्य में बुद्ध की विशाल मूर्ति है तथा मन्दिर की दीवारों पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित तथा जातक ग्रन्थों से ली गयी बहुसंख्यक कथाओं का भव्य एवं कलापूर्ण अंकन हुआ है। सम्पूर्ण मन्दिर भारतीय ढग से निर्मित लगता है।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त चम्पा के माइसोन तथा पो-नगर के मन्दिर, अंकोरथोम का बेयोनमन्दिर, जावा का लोरोजोंगरम् मन्दिर आदि भी सुदूर-पूर्व के हिन्दू वास्तु एवं स्थापत्य के अनूठे उदाहरण है। इन सबको देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इनका निर्माण भारतीय कलाकारों ने ही किया होगा।

मन्दिरों के अतिरिक्त विभिन्न स्थानों से बुद्ध, बोधिसत्व, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, गणेश, कार्तिकेय आदि देवी-देवताओं की बहुसंख्यक मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं जो दक्षिणी-पूर्वी एशिया में हिन्दू-तक्षणकला के व्यापक प्रचार-प्रसार की सबल साक्षी हैं।

इस प्रकार दक्षिण-पूर्व एशिया की सभ्यता भारतीय सभ्यता से पूर्णतया प्रभावित है।

Scanned with CamSc